

डॉ० प्रभा पंत के काव्य में लोकमंगल की भावना

बीज शब्द :

लोकमंगल की भावना, मानवीय संबंध, जीवन मूल्य, पर्यावरण असंतुलन, समग्र विकास।

डॉ घनाक्षी पांडे

डॉ० प्रभा पंत के काव्य में लोकमंगल की भावना

“कीरति भनिति भूति भल सोई, सुरसरिसम सब कह हित होई”

अर्थात् यश कविता और वैभव वही श्रेष्ठ है, जिससे गंगा के समान सबका कल्याण हो। अपनी इन पंक्तियों द्वारा तुलसीदास जी ने काव्य के लोकोपकारी तत्त्व को स्वीकृति प्रदान की है। लोकोपकार कोई एक विशेष प्रवृत्ति नहीं है, जो किसी एक काल विशेष के लिये मान्य हो; बल्कि यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसकी प्रत्येक काल में महती आवश्यकता है। वास्तव में लोकोपकार की प्रतिष्ठा से ही समाज उचित दिशा में विकासमान हो सकता है। आज बढ़ती प्रतिस्पर्धा, सामाजिक विषमता, प्राकृतिक आपदा, आतंकवाद, संवेदनशून्यता आदि ने मानव जीवन को असुरक्षित कर दिया है। संबंधों में परस्पर प्रेम तथा विश्वास के स्थान पर भय व अविश्वास की जड़ें गहरी होती जा रही हैं। वास्तव में बढ़ती जनसंख्या तथा संसाधनों के अप्राकृतिक दोहन ने जहाँ एक ओर अनेक प्राकृतिक आपदाओं को जन्म दिया है; वहीं दूसरी ओर, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि समस्याओं में भी वृद्धि हुई है। ऐसे अराजकता के दौर में भयग्रस्त मनुष्य, यदि विश्वास का सहारा माँगे तो किससे; कलाकार तथा चिंतक-मनीषी साहित्यकार में यह सामर्थ्य है कि वह बहुआयामी भूमिका निभा सके। ‘साहित्य गहन मानवीय-अनुभवों से संपृक्त होकर ही आत्मीय बन सकता है।’¹² एक कुशल साहित्यकार अपने साहित्य में लोकमंगल के स्वर्णों को मुखरित करके, सहज ही समाज का मार्गदर्शन कर सकता है।

एक ऐसी ही बहुमुखी प्रतिभा की धनी प्रतिष्ठत साहित्यकार हैं, डॉ० प्रभा पंत। उन्होंने अपनी गद्य-पद्य रचनाओं के माध्यम से लोक-कल्याणकारी तत्त्वों की प्रतिष्ठा की है। प्रस्तुत शोधपत्र में मैंने, कवयित्री के ‘मैं’... नामक काव्यसंग्रह में लोकमंगलकारी तत्त्वों को उजागर करने का प्रयास किया है। वर्तमान समय में मानवीय संबंधों में उपजे अविश्वास के कारण मानवीयमूल्यों का क्षरण हुआ है, ऐसे समय में समाज को संवेदनशील बनने की महती आवश्यकता है। संग्रह की पहली कविता ‘अपना बना लो’ में कवयित्री, ईश्वर से ऐसी संवेदनाएँ जाग्रत करने की प्रार्थना करती है, जिससे हृदय के सुषुप्त जीवनमूल्य चैतन्य हो उठें तथा भौतिक समृद्धि महत्त्वहीन प्रतीत होने लगे और जीवन लोकोपकार में प्रवृत्त हो जाए, “जब भी कोई द्वारे आए/ निराश होकर कभी न जाए/ संवेदनशील मुझे बनाकर/ सुषुप्त जीवन-मूल्य जगा दो/

सरिता बनकर बहना सीखूँ/ अकिंचन को जीना सिखा दो।”³

बालमन में जो संस्कार अंकित हो जाते हैं, वे जीवनभर प्रभावशाली बने रहते हैं। बाल्यकाल में बच्चों का मन अत्यधिक कोमल होता है, कठोरता उनके मन को आघात पहुँचाती है। खेल-खेल में की क्रियाएँ उन्हें आनन्दित करने के साथ ही उनके स्वाभाविक विकास में भी सहायक होती हैं। ‘बचपन जीने दो’ कविता में, कवयित्री माता-पिता तथा अभिभावकों को, अपने बच्चों को आनन्द और उत्साह के साथ स्वाभाविक जीवन जीने देने के लिये प्रेरित करती हुई कहती है, ‘अभी तो ली अँगड़ाई है/प्रातः की लाली छाई है/कलियों को मुकुलित होने दो/पौधे धरती पर बोने दो/आनन्द-अमृत पीने दो/बच्चों को बचपन जीने दो।’⁴ यद्यपि, बाल्यकाल मौज-मस्ती का समय है, परन्तु इसी समय से अभिभावकों को अपने बच्चों को जीवनसंग्राम के लिये भी तैयार करना होता है। अभिभावकों को उनके इस कर्तव्य के प्रति सजग करते हुए कवयित्री कहती हैं, ‘सिंह भी अपने बच्चों को, देखो! आखेट सिखाता है/मार्गदर्शन करके उनका/जीने की राह दिखाता है/तुम भी प्रयत्न करने दो/गिर जाँएँ यदि उठने दो/बच्चों को बचपन जीने दो।’⁵

मानवजीवन ईश्वर प्रदत्त अप्रतिम वरदान है। मानव की उपलब्धियाँ तथा सफलताएँ वास्तव में ईश्वर का आशीर्वाद ही हैं; इसीलिये ‘नित आश्रय पाऊँ’ कविता में कवयित्री ईश्वर से प्राप्त उपलब्धियाँ उसी को समर्पित करके, अपने जीवन को यज्ञ की समिधा के समान होम करती हुई दैदीप्यमान होने की कामना करती हुई कहती हैं, ‘तुझसे समुद्भव प्रियवर मेरा/तुझमें ही नित आश्रय पाऊँ/दावानल व्यर्थ करे न मुझको/समिधा बन प्रज्वलित हो जाऊँ।’⁶

आज की दौड़-भाग भरी जिंदगी में व्यक्ति स्वकेन्द्रित होता जा रहा है; परन्तु स्वकेन्द्रण की यह प्रवृत्ति समाज के लिये कल्याणकारी नहीं है, इसलिये कवयित्री कामना करती है कि ईश्वर उसे स्वकेन्द्रित होने से बचाए ताकि वह मानवकल्याण की दिशा में प्रवृत्त हो सकें, ‘स्वकेन्द्रित न मुझको होने देना/जन-जन की सेवा कर पाऊँ/मानव-जीवन जो पाया मैंने/पशुवत् उसे न व्यर्थ गवाऊँ/तुझसे समुद्भव प्रियवर मेरा/तुझमें ही नित आश्रय पाऊँ/अहंकार न आच्छादित कर पाए/निर्विकार जीवन मैं पाऊँ/इतनी

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड 14वें दोहे से पहले पाँचवीं चौपाई की पहली अर्धालि

2. पाण्डेय (डॉ०) रतनकुमार, आलोचक और आलोचना सिद्धांत, पृ०सं० - 30, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

3. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 01 जगदम्बा पब्लिशिंग कंपनी, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012

4. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 03 पूर्ववत

5. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 04 पूर्ववत

6. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 05 पूर्ववत

शक्ति देना प्रभु मुझको/निष्काम भक्ति में कर पाऊँ।” प्रियजनों का स्नेह व सामीप्य मानवमन के लिये औषधि के समान होता है। यदि मनुष्य को संबंधों में आत्मीयता, स्नेह व विश्वास प्राप्त होता है तो वह मनोविकारों से मुक्त होने लगता है और उसके हृदय से परस्पर प्रतिस्पर्धा, जय-पराजय जैसे भाव भी स्वतः मिट जाते हैं। ‘बिखरे मोती’ कविता की ये पंक्तियाँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं, ‘पराजित होकर दुनियाँ से/जय हमारी हो गई/स्नेहिल स्पर्श पाकर तुम्हार/स्पर्धा तिरोहित हो गई।’⁸

मनुष्य के हृदय की अनेक अवस्थाएँ होती हैं। अनेक बार ऐसा भी होता है, जब व्यक्ति बाह्यरूप से हँसता-खिलखिलाता दिखाई देता है, पर आन्तरिक रूप में वह अत्यन्त हताश या निराश होता है। ऐसी स्थिति में धीरे-धीरे जब वह टूटकर बिखरने लगता है तो स्वयं को समेटने के लिये नशे का सहारा ले लेता है। इतना ही नहीं कभी-कभी अवसादग्रस्त होकर आत्महत्या तक कर लेता है। अतः आत्मीयजनों को अपने स्नेह द्वारा उसकी उदासी तथा निराशा के कारणों को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। जीवन के प्रति नई सोच और नए स्वप्न व्यक्ति को आन्तरिक प्रसन्नता प्रदान करके, उसमें जिजीविषा जाग्रत कर सकते हैं, ‘गमगम-सा क्यों लगता है वो/दर्द की बदरी हटाओ कोई/हँसता है पर खुश नहीं/उसकी खुशी ढूँढके लाओ कोई/क्यों जा बैठा वो वीराने में/उसे ख़्वाब नया दिखाओ कोई/भुला बैठा है वो क्यों खुद को/उसका तारुफ उससे, कराओ कोई।’⁹

जीवन में परस्पर स्नेह का बंधन मानवता का मार्ग प्रशस्त करता है। आज समाज में प्रेम-बंधन की शिथिलता के कारण ही घर-परिवार टूटते जा रहे हैं, अतः प्रेम व विश्वास के बंधन की सर्वाधिक आवश्यकता है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने की होड़ में मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि आत्मीयता व स्नेहादि जैसे शाश्वत मनोभावों को विस्मृत कर इनकी अनदेखी कर रहा है। स्नेहभाव इतना शक्तिशाली है कि इसके आवेग में प्रवाहित होकर मानवमन के अनेक विकार स्वतः दूर हो जाते हैं; अतः पंत जी अधिकारों की बढ़ती प्रतिस्पर्धा के मध्य स्नेह बंधन को सुदृढ़ बनाने के लिये अभिप्रेरित करती हुई कहती हैं, “नेह का बंधन ऐसा बंधन/जिसमें बँधकर मुक्त हुआ मन/अधिकारों की खींचातानी में/टूट न जाए स्नेह का बंधन/तू-तू, मैं-मैं क्यों करते हो/बढ़ती जाती मन की उलझन/आओ मिलकर हम-तुम पोछें/उजला कर लें मन का दर्पण।”¹⁰

समाज में जो लोग सामर्थ्यवान हैं, उन्हें निर्बलों और

असहायों को शक्तिशाली बनाने की दिशा में प्रयास करने चाहिये; क्योंकि समाज में व्याप्त विषमता को समर्थ व्यक्ति ही दूर कर सकते हैं। ऐसे प्रयासों से सहज ही व्यक्ति तथा समाज का संतुलित विकास हो सकता है और व्यक्ति लोकमंगलकारी कार्य तभी कर सकता है, जब वह मनोविकार रहित हो तथा उसका अंतस् निर्मल हो। तभी तो कवयित्री भावविभोर होकर ईश्वर से प्रार्थना करती हुई कह उठती है, ‘तन्द्रा, अलस, अहं-लालसा/क्रोधकालिमा अजर मिटा दो/स्फूर्ति, उल्लास, अभय देकर/अनुरंजित मन-हर्षण भर दो/अन्न, वसन, आश्रय दे पाऊँ/सक्षम-सामर्थ्यवान कर दो/पतितों का अवलम्ब बनाकर/जिजीविषा मुझमें भर दो/सच्चिदानन्द! अब बाँह गहकर/आनन्दसर-अवगाह करा दो।’¹¹

देश में प्रतिवर्ष अनेक सामाजिक कार्यकर्ता उत्कृष्ट कार्यों के लिये पुरस्कृत किये जाते हैं; फिर भी जनसामान्य की स्थितियों में अपेक्षित सुधार दृष्टिगत नहीं हो रहा है। यह स्थिति इन पुरस्कारों की गरिमा पर प्रश्न चिह्न लगाती है। विडम्बना यह है कि एक ओर तो लोग अच्छे कार्यों के लिये सम्मान व पुरस्कार प्राप्त कर रहे हैं, और दूसरी ओर आज भी बच्चे भूखे-प्यासे और बेघर हैं; लोग असहाय व लाचार होकर भटक रहे हैं तथा लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हो पा रही है; इसीलिये कवयित्री मान-सम्मान व पुरस्कारों से अधिक महत्वपूर्ण मानतीं जनकल्याणकारी कार्यों को। जब उसे अपने प्रयास अधूरे प्रतीत होते हैं तो व्यथित होकर वह कह उठती है, ‘मिले थे मुझे/इस जन्म से भी पहले/पदक-दुशाले, मान-सम्मान/और/गौरवशाली पद कितने ही/किन्तु/भूखे-प्यासे, विवश-बेघर बच्चे/अनाथ, एकाकी, व्याकुल थे तब भी/सनाथ समझकर खुश रहने वाले/अगणित असहाय, दिखते हैं अब भी।’¹² कवयित्री का मानना है कि व्यक्ति को कोई भी कार्य पुरस्कार प्राप्त करने की कामना से न करके, समाज के उत्थान तथा जनकल्याण की भावना से करते हुए अपने कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिये; क्योंकि लोकप्रियता बढ़ते जाने मात्र से समाज की स्थितियों में कोई सुधार नहीं आता, अपितु इससे व्यक्ति का अहंकार ही बढ़ता जाता है, ‘मान-अपमान भरी दुनिया में/लोकप्रियता यदि बढ़ती भी जाए/क्या फर्क पड़ेगा इससे मुझको/ ‘मैं’ की पर्त ही चढ़ती जाए।’¹³

यद्यपि समाज में साक्षरों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, किन्तु बालिकाओं के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में अभी भी विशेष अंतर नहीं आया है; कन्याभ्रूण हत्या इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अनेक लोग ऐसे भी हैं जो दूसरों के घरों बेटियों को देखकर खुश होते हैं, किन्तु अपने घर में बालिकाओं को जन्म से पूर्व ही

7. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 06 पूर्ववत
8. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 10 पूर्ववत
9. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 14 पूर्ववत
10. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 23 पूर्ववत

11. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 32-33 पूर्ववत
12. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 35 पूर्ववत
13. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 35 पूर्ववत

माँ के गर्भ में मार देते हैं और उन्हें अपराधबोध भी नहीं होता। ऐसे लोगों पर कटाक्ष करते हुए कवयित्री कहती हैं, 'रंगोली बनाती, दीप जलाती/भाई की कलाई पर राखी सजाती/घर को उत्सवघर बनाती अच्छी लगती हैं लड़कियाँ/दूसरों के घर में/किन्तु/जन्म लेती, किलकारी करतीं/बरसाती बेलों-सी बढ़ती/व्यथित करती हैं लड़कियाँ अपने घर में/तभी तो/बिम्ब दिखते ही कोख में/अंकुरित होती नहीं कोपल को/नोंच-खसोटकर निर्ममता से/उखाड़ फेंकते हैं जड़ से हम।'¹⁴ कवयित्री चाहती है कि प्रत्येक घर में नारी सुशिक्षित हो जिससे समृद्ध व विकसित राष्ट्र की नींव डाली जा सके। उसकी यह भी कामना है कि देश में ऐसी परिस्थितियाँ कभी पैदा न हों, जिससे भारतमाता की किसी संतान को भी भूखा सोना पड़े। देश की हर बेटे को भी अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेने का अधिकार हो, ताकि वह स्वतंत्रता अनुभव कर सके। उसकी कामना है, 'जलधारा-सम बहती जाऊँ/दोनों कूलों के साथ-साथ/हरदिन, हरपल आज़ादी का/अनुभव करना है मुझे/पढ़ी-लिखी माँ घर-घर में हो/भूखा नहीं कोई सोए/भारत माँ के इस स्वप्न को/करना है साकार मुझे/स्वतन्त्र भारत के उन्मुक्त गगन में/पंछी बन उड़ना है मुझे।'¹⁵

प्रकृति के अधिकांश उपादान ऐसे हैं, जो अपना सर्वस्व अर्पित कर दूसरों के जीवन में खुशियाँ बिखेरते हैं। नदियाँ जल द्वारा, वृक्ष फलों द्वारा तथा सूर्य अपने ताप द्वारा प्राणी जगत को सुखी बनाते हैं। इसी तरह, 'मेंहदी कहती है हमसे/प्रेम-प्रतीक बन मैं निखरती/अपने जीवन के रंग देकर/खुशियाँ जीवन में बिखराती/भीनी- सी मोहक मेरी खुशबू/सूनी हथेलियों को रंगकर मैं/सबके जीवन को महकाती।'¹⁶ वन अनेक प्राणियों का जीवनाधार है। ये प्राणियों को आश्रय प्रदान करने के साथ ही जीवनपर्यंत उनकी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं। प्रकृति की इस अनुपम भेंट का मानव कल्याण के लिये उपयोग करने के स्थान पर कुछ स्वार्थी लोग इसका प्रयोग केवल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये करते हैं। प्राकृतिक संपदा का अति दोहन करने वाले ऐसे वनहर्ताओं के विरुद्ध कवयित्री जनसामान्य को जागरूक करते हुए कहती है, 'माँ के उर से खींच रहा/वन-हर्ता उसके आँचल को/नोंच-नोंच कर फेंक रहा/वन-हर्ता देखो जंगल में/माँ के उर से खींच रहा/वन-हर्ता उसके आँचल को/नोंच-नोंच कर फेंक रहा/वन-हर्ता देखो जंगल में/मुकुट बेचा माँ का उसने/आभूषण सारे बेच दिये/अब तन भी उसका बेच रहा/वन-हर्ता देखो जंगल में।'¹⁷

प्रकृति कभी माँ की भाँति, कभी सहचरी की भाँति तो

कभी बहन की भाँति प्राणियों को आश्रय प्रदान करती है। इसी भाँति प्रकृति के अन्य उपादान भी अपने अस्तित्व को मिटाकर, मानव तथा अन्य प्राणियों के कल्याण में प्रवृत्त रहते हैं। पहाड़ मनुष्य की जल, जंगल तथा ज़मीन की आवश्यकता की पूर्ति करने के साथ ही अनेक आपदाओं से जीवों को सुरक्षा भी प्रदान करता है। यद्यपि पर्वत बाह्यरूप से अत्यंत कठोर दिखाई देते हैं, किन्तु भीतर से कितने कोमल होते हैं; 'पहाड़' कविता के माध्यम से कवयित्री ने पर्वत के इसी लोकोपकारी मृदुल रूप को चित्रित किया है, 'फेनिल झरनों/अविरल बहते स्रोतों/फूलों, नीड़ों में/चहकते परिंदों/उछलते-कूदते वानरों/कंदराओं में आश्रित प्राणियों/और/मुदित-शावकों के उन्मुक्त विचरण में/दिखने लगती है/उनके अंतस् की कोमलता और ममता/पथिकों को गंतव्य तक पहुँचाने/डोली-डानी लाने-ले जाने के लिए/अपना अस्तित्व मिटाकर भी/मार्ग देते हैं पहाड़/घर बनाने के लिए/अस्थियाँ देकर भी अपनी/मुस्कुराते रहते ये अडिग पहाड़।'¹⁸ कवयित्री इस बात से अत्यंत आहत है कि मनुष्य विकास की अंधाधुंध तथा निरन्तर आगे बढ़ने की लालसा में न पर्यावरण की चिंता कर रहा है और न मानवीय मूल्यों के संरक्षण की। इस तरह के अनियोजित विकास का दुष्परिणाम यह हुआ है कि पशु-पक्षियों के आश्रयस्थल नष्ट हो रहे हैं तथा वे विलुप्त होते जा रहे हैं। ऐसा विकास, जिससे पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न हो जाए, अंततः विनाश का ही सूचक है, परन्तु इन सब तथ्यों से परिचित होने के उपरांत भी मनुष्य सचेत नहीं हुआ है। इस तरह के छद्म विकास को कवयित्री मानवीय विकास नहीं बल्कि दानवों का संवर्द्धन मानती हैं, 'बन रहा अब मानव, दानव/आगे बढ़ने की होड़ में/पक्षियों का कलरव नहीं/चीत्कारमयी इस भोर में/अन्त नहीं जिस दौड़ का/लाभ क्या निरर्थक होड़ का/जीतकर जिसमें मिलती हार/क्यों कर रहे हम इसे स्वीकार?'¹⁹

अधिकांशतः माता-पिता तथा अभिभावक अपने पाल्यों को अपनी जीवनदृष्टि के अनुरूप विकसित करना चाहते हैं। वे अपनी अधूरी इच्छाएँ तथा आकांक्षाएँ उन पर थोपना चाहते हैं, जबकि बालक अपने अनुभवों से जीवनदृष्टि तथा नवीन जीवनमूल्यों का निर्माण करना चाहते हैं। 'उठकर गिरना, गिरकर उठना/लड़खड़ाकर आगे बढ़ना/सब कुछ है स्वीकार मुझे/किन्तु/तुम्हारी उँगली थामें/आश्रय लेकर आगे बढ़ना/लीक में चलकर शब्द गढ़ना/किंचित भी स्वीकार नहीं/तुम्हारी दृष्टि के धुँधले अनुभव/क्यों उनको अपना विषय बनाऊँ?'²⁰

पुस्तकों में अनन्त ज्ञान समाहित है। पुस्तकें अतीतबोध तो

14. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 44 पूर्ववत
15. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० -51 पूर्ववत
16. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० -52 पूर्ववत
17. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 56 पूर्ववत

18. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 57 पूर्ववत
19. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 67 पूर्ववत
20. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 69-70 पूर्ववत

कराती ही, भविष्य संवारने का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। अच्छी पुस्तकें मनुष्य को अच्छे मित्र की भाँति पथभ्रष्ट होने से बचाती हैं तथा उचित निर्णय लेने में सहायक भी होती हैं। कवयित्री अपनी कविता के माध्यम से लोगों को पुस्तकें पढ़ने के लिये प्रेरित करती है, ताकि कुशल व योग्य व्यक्तियों का निर्माण हो सके। कोई भी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र तभी समुन्नत हो सकता है, जब उसके नागरिक सुशिक्षित एवं चिंतनशील हों। अतः कवयित्री पुस्तकरूपी ज्ञाननदी में अवगाहन करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति का आह्वान करती हुई कहती है, 'मुझमें, अतीत-वर्तमान-भविष्य/सभ्यता, संस्कृति, भाषा और/अध्यात्म-दर्शन समाहित है/जो भी जिज्ञासा तुममें/पूछो मुझसे, मैं समझाऊँगी/अपना बनाकर देखो एक बार/जितने भी हैं रिश्तों के बंधन/क्षणभर में सारे खुल जाएँगे/मन-मालिन्य कितना हो गहरा/कालुष्य सारे धुल जाएँगे/आओ अवगाहन करो मुझमें/तट को छोड़ो आओ मझधार।'²¹

यदि समाज में वैमनस्य और कटुता बढ़ती है तो यह मानव की चिंतनशील प्रवृत्ति में कमी आने का संकेत है तथा इस बात का भी संकेत है कि व्यक्ति के क्रिया-कलाप चिंतन द्वारा निर्धारित न होकर क्षणिक आवेग द्वारा निर्धारित हो रहे हैं। कवयित्री का मानना है कि आज के प्रतिस्पर्धापूर्ण जीवन में व्यक्ति को चिंतन की महती आवश्यकता है। चिंतन द्वारा व्यक्ति के भावों एवं विचारों का परिष्कार होता है। उच्च विचार ही समाज राष्ट्र अथवा विश्व को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। इसीलिये कवयित्री संग्रह की अंतिम कविता 'आह्वान' के माध्यम से लोगों को चिंतन-मनन हेतु अभिप्रेरित करते हुए कहती हैं, 'मानवता करती आह्वान/आत्मचिन्तन, मनन-मंथन करें/क्षुधा-तृष्णा, व्यथा मिटाकर/चीत्कार औ' आर्त्तनाद हरे/धरती के कण-कण में हम/मिल जुलकर आह्लाद भरे/जाति-धर्म का भेद मिटाकर, आओ! नव-निर्माण करें।'²²

निष्कर्षतः 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को लोकमंगल से जोड़ा। वे लोकमंगल को काव्य का मुख्य गुणधर्म मानते थे। उनकी दृष्टि में साहित्य, काव्य-रस की सृष्टि द्वारा सहृदय को आनंद तो प्रदान करता है, परन्तु आनन्द ही साध्य नहीं है; यह तो मात्र काव्य के सच्चे प्रयोजन तक पहुँचाने का मार्ग है। काव्य की सच्ची सार्थकता आनंद के पश्चात् सहृदय को कर्म के लिये उत्तेजित कर देने में है।'²³ इस दृष्टि से कविता संग्रह 'मैं' लोकमंगल भावना की दृष्टि से गागर में सागर को चरितार्थ करने वाला है। इसमें मानवीय संवेदनाओं, आत्मचिंतन, मनन, परस्पर

स्नेह-प्रेम व विश्वास आदि मूल्यों को स्थापित किया गया है तथा अहंकार, स्वकेन्द्रण, वर्गविषमता, वैमनस्य आदि नकारात्मक भावों को त्यागने का आह्वान किया गया है। कन्याभ्रूण हत्या, प्राकृतिक संपदा का अप्राकृतिक दोहन तथा विनाश के कगार पर पहुँचाने वाले विकास का कवयित्री ने विरोध किया है। इस प्रकार कवयित्री ने संवेदनशील बनने, निर्बलों की सेवा करने, लोगों को प्रसन्नता प्रदान करने, असहायों का सहारा बनने, कलुषता तथा मनोमालिन्य मिटाने, जन-जन को शिक्षित करने के लिये तथा बाल्यकाल को तनावमुक्त करके, बच्चों का सहज एवं सर्वांगीण विकास करके समाज को लोकमंगलकारी दृष्टि हेतु अभिप्रेरित किया है।



शोध सारांश का ई-प्रकाशन E-Publication of Research Abstracts

अपने पी.एच.डी./डी.लिट. अथवा स्वतंत्र शोध कार्य की संक्षिप्तिका का ई-प्रकाशन कर अपने कार्य को वैश्विक शोध संदर्भों से जोड़ें। निम्न प्रारूप में शोधसार (अधिकतम 5000 शब्दों में) बनाकर संपादकीय कार्यालय में प्रेषित करें। शोधसारांश के प्रकाशन हेतु सम्पादक के नाम पत्र होना चाहिए, जिसमें स्पष्ट रूप से शोध-पत्र के सम्बन्ध में "मौलिक एवं अप्रकाशित" शब्द लिखा होना चाहिए। प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर करें।

1. शोध शीर्षक Title
2. शोधकर्ता Name of Researcher
3. शोधपर्यवेक्षक Name of Research Supervisor
4. संबद्ध विभाग (पी.एच.डी./डी.लिट. के लिए) Concerning Department
5. विश्वविद्यालय/शोधसंस्थान University/Research Institute
6. शोध सारांश Abstract
7. अनुक्रम Index
8. पता Mailing Address and Contact No.(if you wish to Publish)

21. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० -71 पूर्ववत

22. पंत, (डॉ०) प्रभा, कविता संग्रह मैं..., पृ०सं० - 73 पूर्ववत

23. पाण्डेय (डॉ०) रतनकुमार, आलोचक और आलोचना सिद्धांत, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली